# जैनधर्म के आधारभूत तत्त्व : एक दिग्दर्शन

☐ श्री भगवती मुनि 'निर्मल'

विश्व के समस्त दर्शनों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रत्येक धर्म के दो रूप होते हैं, दर्शन और धर्म, विचार और आचार, सिद्धान्त और व्यवहार। जैनदर्शन में उन दोनों का सुन्दर समन्वय हुआ है। जिस प्रकार वैदिकपरम्परा में पूर्वमीमांसा कर्म पर, क्रिया पर एवं आचार पर बल देती है तो उत्तरमीमांसा ज्ञान पर अधिक बल देती है। पूर्वमीमांसा कर्मकाण्ड पर तो उत्तरमीमांसा ज्ञानकाण्ड पर अपना अधिकारपूर्वक बल देती है। सांख्य व योग के सम्बन्ध में भी यही कथन प्रकट है। सांख्य ज्ञान का सिद्धान्त है तो योग आचार का। सांख्य प्रकृति और पुरुष के भेद-विज्ञान को महत्त्व देता है तो योग चित्त की विशुद्धि पर एवं समाधि को महत्व देता है। बौद्ध परम्परा के भी दो पक्ष हैं हीनयान और महायान। हीनयान जीवन के आचार-पक्ष पर अधिक जोर देता है तो महायान जीवन के विचार पक्ष को पुष्ट करता है। प्रत्येक सम्प्रदाय ने विचार-पक्ष को किसी न किसी रूप में स्वीकार किया है, यह निश्चित है। उसी प्रकार जैनदर्शन ने भी आचार और विचार दोनों पक्षों को स्वीकार अवश्य किया है। प्रत्येक अध्यात्मवादी दर्शन को जीवन के इन मूल तत्त्वों पर अवश्यमेव विचार करना अवश्यम्भावी है।

**अनेकान्त और अहिंसा**—जैनदर्शन ने आचार और विचार पर गहराई से विचार किया है। उसके किसी भी सम्प्रदाय ने अथवा उपसम्प्रदाय ने एकान्त ज्ञान और एकान्त क्रिया पर एक-मुखी विचार नहीं किया, पर बहुमुखी दृष्टि से विचार किया है। अनेकान्तवादी किसी एक पक्ष पर अपना जोर नहीं डालता। अनेकान्त में किसी भी एकान्त का आश्रय नहीं लिया जा सकता। ज्ञान बहुत बड़े अंश तक व्यक्तिनिष्ठ होता है। अतः मूलतः वस्तुनिष्ठ होने के बावजूद उसमें एकान्तिक विश्वस्तता सम्भव नहीं है। अर्थात् यह सम्भव नहीं कि जिस वस्तु को 'क' जिस रूप में देखता हो 'ख' भी उसको उसी रूप में देखता हो। ज्ञान में रूपभेद, उपयोगिता भेद, इन्द्रियशक्ति भेद आदि के अतिरिक्त व्यक्तिनिष्ठता और वस्तुनिष्ठता के अनुपात में भी अन्तर होता है। जैन दार्शनिक वस्तु को अनेकान्तात्मक मानते हैं। अन्त का अभिप्राय है अंश या धर्म। प्रत्येक वस्तु के अनेक धर्म होते हैं। न तो वस्तु सर्वप्रकारेण सत् होती है और न असत्, न सर्वथा नित्य न सर्वथा अनित्य। सभी प्रकार की एकान्तिकता के विपरीत जैन दार्शनिक के मत में वस्तु कथंचित् सत् और कथंचित् असत् तो कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य होती है। वस्तु के अनेकान्तपरक कथन का नाम स्याद्वाद है। सम्बन्धित वस्तु के एक धर्म के सापेक्षकथन का नाम नय है। महान् दार्शनिक आचार्य समन्तभद्र के मत में सर्वथा एकान्त को त्याग कर सात भङ्गों या नयों की अपेक्षा से स्वभाव की अपेक्षा सत् और परभाव की अपेक्षा असत् आदि के रूप में जो कथन किया जाता है वह स्याद्वाद कहलाता है।[1] अनेकान्तवाद को सप्तभंगी नय भी कहते हैं। अष्टसहस्री के अनुसार विधि और प्रतिषेध पर आधारित कल्पनामूलक भंग इस प्रकार हैं—

(१) विधि कल्पना—स्यात् अस्ति एव।

(२) प्रतिषेध कल्पना—स्यात् नास्ति एवं।

---

१ (क) स्याद्वाद सर्वथैकान्तत्यागात् किं वृतचिद्विधिः सप्तभंग नयापेक्षो हेयादेय विशेषकः

—आप्त मीमांसा

(ख) अनेकान्तात्मकार्थकथनं स्याद्वादः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(३) क्रमशः विधि-प्रतिषेध कल्पना—स्यात् अस्ति नास्ति च।
(४) युगपद् विधि-प्रतिषेध कल्पना—स्यात् अवक्तव्य।
(५) विधि कल्पना और युगपद् कल्पना—स्यादस्ति चावक्तव्यः।
(६) प्रतिषेध कल्पना और युगपद् प्रतिषेध कल्पना—स्यान्नास्ति चावक्तव्यः।
(७) क्रम और युगपद् विधि-प्रतिषेध कल्पना—स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यः।

महान् दार्शनिक श्री यशोविजयजी के मतानुसार सप्तभंगी सात प्रकार के प्रश्नों और सात प्रकार के उत्तरों पर निर्भर है ?[1]

यहाँ जो 'स्यात्' शब्द का प्रयोग हुआ है वह क्रियावाचक भी होता है। किन्तु प्रस्तुत सन्दर्भ में 'स्यात्' शब्द निपात के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

जैनधर्म का विचार-पक्ष अनेकान्तवाद है वहाँ आचार-पक्ष है अहिंसा।

**आचार-पक्ष अहिंसा का विकास**—जैन परम्परा में अहिंसा का जितना विकास हुआ है उतना अन्य किसी भी भारतीय परम्परा में नहीं हुआ है। जैन-परम्परा के लिए यह एक गौरव की वस्तु है। अहिंसा से बढ़कर इन्सान को इस धरती पर अन्य कोई धर्म और आचार नहीं हो सकता। जैनधर्म व सिद्धान्त के आलोचक भी किसी न किसी रूप में अहिंसा को स्वीकार करते हैं।

तीर्थंकर, गणधर, श्रुतधर और आचार्यों ने अपने-अपने युग में इस अहिंसा के आचार का इतना गम्भीर और विराट रूप प्रस्तुत किया है कि इसके अनन्त आकाश के नीचे मृत्युलोक की धरा पर पनपने वाले समस्त धर्मों का समावेश इसमें हो जाता है। जहाँ अनेकान्तवाद एक दृष्टि एवं एक विचार है, सत्य के अनुसन्धान की एक पद्धति है। मानव मस्तिष्क की एक जटिल उलझन नहीं, बल्कि इसको समझे बिना मानव-जीवन के किसी भी पहलू को न समझा जा सकता है, न सुलझाया जा सकता है। आचार में अहिंसा और विचार में अनेकान्तवाद ये दो जैनधर्म के मूलभूत सिद्धान्त हैं। इनका समन्वित मार्ग ही जीवन का विकास है।

**ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः**

**जैनधर्म का मूल**—भारतीय दर्शन और धर्म के विचारकों ने आत्मा और परमात्मा व विश्व के बारे में गहन चिन्तन-मनन और अन्वेषण किया है। इस अध्यात्म-ज्ञान परम्परा को भारतीय साहित्य में श्रुति, श्रुत और आगम कहा गया है। जैनधर्म के अनुसार गणधर तीर्थंकर की वाणी को ग्रहण करके सूत्ररूप में उसकी संरचना करते हैं। इसी को श्रुत, शास्त्र व आगम कहा जाता है। जैनधर्म की यह मान्यता है कि प्रत्येक तीर्थंकर अपने शासन काल में द्वादशांग वाणी की देशना करते हैं। अनन्त अतीत के तीर्थंकरों ने जो कुछ कहा है वही तत्त्व-ज्ञान वर्तमान काल के तीर्थंकरों ने कहा है। अनन्त अनागत तीर्थंकर भी कहेंगे। अतः प्रवाह की दृष्टि से द्वादशांग वाणी अनादि अनन्त भी है। परन्तु किसी भी व्यक्ति विशेष की दृष्टि से सादिसान्त भी है। प्रवाह से अनादि अनन्त होते हुए भी कृतक है, अकृतक नहीं; पौरुषेय है अपौरुषेय नहीं। वाणी भाषा है और भाषा शब्दों का समूह है। वाणी, भाषा शब्द किसी भी शरीर के प्रयत्न से ही उत्पन्न हो सकता है।

ताल्वादि जन्मानन्नुवर्णवर्शो वर्णात्मको वदे इतिस्फुटं च।
पुंसश्च ताल्वादिततः कथं स्यात् अपौरुषेयोऽयमिति प्रतीतिः॥

---

१ इयं च सप्तभङ्गी वस्तुनि प्रतिपर्याय सप्तविध धर्माणां सम्भवात् सप्तविधसंशयोत्थापित सप्तविधजिज्ञासामूल सप्तविधप्रश्नानुरोधादुपपद्यते। —जैनतर्कभाषा-सप्तभंगी स्वरूपचर्चा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभिप्राय यह है कि शब्द की अपेक्षा से शास्त्र अनित्य है। किन्तु भावों की अपेक्षा से शास्त्र अनादि अनन्त है। भाव का अर्थ है विचार, विचार का अर्थ है ज्ञान। वेदान्त और जैन-दर्शन ने ज्ञान को अनन्त माना है। न कभी उत्पन्न होता है, न कभी नष्ट होता है। भगवान की वाणी का सार है—अहिंसा और अनेकान्त—महावीर सर्वज्ञ थे, अहिंसा के अग्रणी थे। इन्हीं सब अहिंसा के दृष्टिकोणों को लक्ष्य में रखकर उन्होंने अपने अमूल्य प्रवचन में कहा—

सव्वे जीवावि इच्छन्ति जीविउं न मरिज्जिउं।

सभी जीव-जीवन के लिए आकुल है। किसी भी धर्म-क्रिया में किसी भी जीव का घात करना पाप है। सभी जीवन के लिए आतुर है। सभी की रक्षा करना धर्म है।

भगवान का सन्देश है कि—

**सव्व-जग-जीव-रक्खण दयट्ठयाए। भगवया पावयणं सुकहियं।**

अहिंसा के पूर्ण अर्थ के द्योतन के लिए अनुकम्पा, दया, करुणा आदि शब्दों का प्रादुर्भाव हुआ है।

तत्त्व बोध—आचार और विचार की विचारणा के साथ-साथ तत्व-चिन्तन पर भी अधिक जोर दिया है। क्योंकि परम्परा की नींव तत्व पर आधारित है। जिस प्रकार बिना नींव के भवन नहीं रह सकता उसी प्रकार बिना तत्त्व के कोई भी परम्परा जीवित नहीं रह सकती। वैशेषिक दर्शन में सात पदार्थ माने गये हैं तो न्यायदर्शन सोलह पदार्थ स्वीकार करता है। सांख्य दर्शन ने पच्चीस तत्त्व स्वीकार किये हैं। मीमांसादर्शन वेद विहित कर्म को सत् मानता है। वेदान्त दर्शन एकमात्र ब्रह्म को ही सत् मानता है शेष सर्व असत् है—माया है।[1] बौद्धदर्शन ने चार आर्य सत्य कहे हैं। जैनदर्शन ने दो तत्व, सप्त तत्व व नौ तत्व स्वीकार किए गए हैं। दो तत्त्व हैं—जीव और अजीव। सप्त तत्त्व हैं—जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध व मोक्ष! नौ तत्व हैं—जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। जैनदर्शन सम्मत इन तत्वों में केवल अपेक्षा के आधार पर ही संख्या का भेद है मौलिक नहीं। भगवान महावीर ने इस समग्र संसार को दो राशि में विभक्त किया है—जीव राशि और अजीव राशि। नव तत्त्वों में संवर-निर्जरा और मोक्ष जीव के स्वरूप होने से जीव से भिन्न नहीं है। आस्रव, बन्ध, पुण्य एवं पाप अजोव के पर्याय विशेष होने से अजीव राशि के अन्तर्गत आ जाते हैं। इस अपेक्षा से देखा जाये तो जैन दर्शन द्वितत्त्ववादी है। सांख्यदर्शन भी वही कहता है। वह भी मूलरूप में दो तत्त्व स्वीकार करता है—प्रकृति और पुरुष। शेष तत्त्वों का समावेश वह प्रकृति में ही कर लेता है।

**तत्त्व की परिभाषा**—जैनदर्शन में विभिन्न स्थानों में व विभिन्न प्रसंगों पर सत्, सत्त्व, तत्त्वार्थ, अर्थ, पदार्थ और द्रव्य का प्रयोग एक ही अर्थ में किया गया है अतः ये शब्द पर्याय-वाची हैं। आचार्य उमास्वाति ने तत्वार्थसूत्र में, तत्वार्थ सत् और द्रव्य शब्द का प्रयोग तत्व अर्थ में किया है। अतः जैनदर्शन में जो तत्व है वह सत् है। जो सत् है, वह द्रव्य है। शब्दों का भेद है, भावों का नहीं। आचार्य नेमिचन्द्र ने कहा है कि द्रव्य के दो भेद हैं—जीव द्रव्य और अजीव द्रव्य। शेष संसार इन दोनों का ही प्रपंच है, विस्तार है। बौद्धाचार्य से प्रश्न किया कि सत् क्या है? उत्तर मिला कि—यत् क्षणिकं तत् सत्—इस दृश्यमान विश्व में जो कुछ भी है वह सर्व क्षणिक जो क्षणिक है वह सर्व सत् है। वेदान्तदर्शन का कथन है कि जो अप्रच्युत अनुत्पन्न एवं

---

१ ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक रूप है वही सत् है, शेष सभी मिथ्या है। बौद्धदर्शन एकान्त क्षणिकवादी है तो वेदान्त एकान्त नित्यवादी। दोनों दो विपरीत किनारों पर खड़े हैं। जैन-दर्शन इन दोनों एकान्तवादों को स्वीकार नहीं करता। वह परिणामी नित्यवाद को मानता है। सत् क्या है ? जैन-दर्शन का उत्तर है—जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है वही सत् है यही सत्य तत्व व द्रव्य है। तत्वार्थ सूत्र में कहा है—

**उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्** —तत्वार्थ० ५।२९

उत्पाद और व्यय के बिना ध्रौव्य नहीं रह सकता व ध्रौव्य के बिना उत्पाद और व्यय रह नहीं सकते। एक वस्तु में एक ही समय में उत्पाद भी हो रहा है व्यय भी हो रहा है और ध्रुवत्व भी रहता है। विश्व की प्रत्येक वस्तु द्रव्य की दृष्टि से नित्य है और पर्याय की दृष्टि से अनित्य है। अतः तत्त्व परिणामी नित्य है एकान्त नित्य और एकान्त अनित्य नहीं—तद्भावाव्ययं नित्यम्।

द्रव्य क्या है ? इस प्रश्न का उत्तर जैनदर्शन इस प्रकार देता है—

**गुणपर्यायवद् द्रव्यम्।** —तत्वार्थ० ५।३७

जो गुण और पर्याय का आश्रय एवं आधार है वही द्रव्य है। जैन-दर्शन में सत् के प्रतिपादन की शैली दो प्रकार की है—तत्त्व मुखेन और द्रव्य मुखेन। भगवान महावीर ने समस्त लोक को षड्द्रव्यात्मक कहा है। वे द्रव्य हैं जीव और अजीव। अजीव के भेद हैं पुद्गल, धर्म-अधर्म, आकाश और काल। आकाश और काल का अनुमोदन अन्य दर्शन भी करते हैं। परन्तु धर्म व अधर्म के स्वरूप का प्रतिपादन केवल जैनदर्शन में ही उपलब्ध होता है। पुद्गल के लिए अन्य दर्शनों में कहीं पर जड़ तो कहीं पर प्रकृति, व कहीं पर परमाणु शब्द का प्रयोग किया है। जैन-दर्शन की दृष्टि से यह समग्र लोक जीव, पुद्गल धर्म, अधर्म आकाश और काल इन छहों द्रव्यों का समूह है। ये सभी द्रव्य स्वभावसिद्ध अनादि निधन और लोकस्थिति के कारणभूत है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में मिलता नहीं है। किन्तु परस्पर एक-दूसरे को अवकाश अवश्य देते हैं। लोक की परिधि के बाहर केवल शुद्ध आकाश-द्रव्य ही रहता है, जिसे आलोकाश कहते हैं। शेष सभी द्रव्य लोक में स्थित हैं। लोक से बाहर नहीं। छहों द्रव्य सत् हैं, वे कभी भी असत् नहीं हो सकते।

**सत् की परिभाषा**—किसी भी वस्तु पदार्थ एवं द्रव्य तथा तत्व को सत् कहने का फलितार्थ है कि वह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त है। वस्तु में उत्पत्ति विनाश और स्थिति एक साथ रहती है। वस्तु न एकान्त नित्य है न एकान्त क्षणिक है न एकान्त कूटस्थ नित्य है, किन्तु परिणामी नित्य है। प्रत्येक व्यक्ति अपने प्रत्यक्ष अनुभव से इस तथ्य को जानता और देखता है कि एक ही वस्तु में अवस्था भेद होता रहता है। जिस प्रकार आम्र फल अपनी प्रारम्भिक अवस्था में हरा रहता है फिर कालान्तर में परिपक्व होने पर वही पीला होता है फिर भी वस्तुरूप वह आम्रफल ही रहता है। वस्तु की पूर्वपर्याय नष्ट होती है तो उत्तरपर्याय उत्पन्न होती है। फिर भी वस्तु का मूल रूप सदा स्थिर रहता है। स्वर्ण का कुण्डल मिटता है तो कंकण बनता है। कुण्डल पर्याय का व्यय हुआ तो कंकण पर्याय का उत्पाद हुआ; परन्तु स्वर्णत्व ज्यों का त्यों रहा। द्रव्य का न तो उत्पाद होता है न विनाश। पर्याय ही उत्पन्न और विनष्ट होता है। पर्याय की अपेक्षा से द्रव्य में उत्पाद और विनाश दोनों होते हैं। क्योंकि द्रव्य अपनी पर्यायों से भिन्न नहीं है अतः द्रव्य एक ही समय में उत्पत्ति, विनष्टि और स्थिति रूप भावों से समवेत रहता है।

**द्रव्य का लक्षण**—

**"अद्रुवत् द्रवति द्रोष्यति-तांस्तान पर्यायान् इति द्रव्यम्"**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो भिन्न-भिन्न अवस्थाओं को प्राप्त हुआ व हो रहा है और होगा वह द्रव्य है। इस कथन का आशय है कि वह अपने विविध परिणामों में परिणत होता है। अपनी पर्यायों में द्रवित होता है क्योंकि बिना पर्याय का द्रव्य नहीं हो सकता और बिना द्रव्य के पर्याय नहीं हो सकते। द्रव्य गुणात्मक होता है उसके विभिन्न रूपान्तर ही पर्याय हैं। द्रव्य के बिना गुण नहीं होते हैं तो गुणों के बिना द्रव्य भी नहीं रह सकता। फलितार्थ यह निकला कि जो उत्पाद-व्ययशील होकर भी ध्रुव है और गुण पर्याय से युक्त है वही द्रव्य है। गुणपर्यायवद द्रव्यम ।५।३७। द्रव्य, गुण और पर्याय परस्पर भिन्न हैं अथवा अभिन्न हैं। प्रत्युत्तर में कहा गया कि द्रव्य, गुण और पर्याय में परस्पर अन्यत्व तो अवश्य है किन्तु पृथक्त्व नहीं है। वस्तुओं में जो भेद पाया जाता है वह दो प्रकार का है—अन्यत्व रूप और पृथक्त्व रूप।

अन्यत्व रूप और पृथक्त्वरूप में क्या अन्तर है? तद्रूपता न होना अन्यत्व है और प्रदेशों की भिन्नता पृथक्त्व है जिस प्रकार मोती व मोती का श्वेतरूप (सफेदी) एक ही वस्तु नहीं है फिर भी दोनों के प्रदेश पृथक्-पृथक् नहीं है। परन्तु दण्ड और दण्डी में पृथक्त्व है। दोनों को अलग किया जा सकता है। द्रव्य, गुण और पर्याय में इस प्रकार का पृथक्त्व नहीं है। क्योंकि द्रव्य के बिना गुण और पर्याय नहीं हो सकते और गुण एवं पर्याय के बिना द्रव्य नहीं हो सकता। द्रव्य जिन-जिन पर्यायों को धारण करता है उन-उन पर्यायों में स्वयं ही उत्पन्न होता है। जिस प्रकार एक ही स्वर्ण कुण्डल कंकण और अंगूठी के रूप में बदल जाता है। आत्मा कभी मनुष्य बनता है तो कभी देव तो कभी नारक बनता है तो कभी तिर्यञ्च। कीट, पतंग, पशु, मनुष्य नारी, आदि अनेक रूप धारण करता; परन्तु इन सर्व पर्यायों में उसका आत्मभाव कभी नहीं बदलता रहता है। 'न सा जाइ न सा जोणि जत्थ जीवो न जाइ' कोई ऐसी योनि, कोई ऐसी जाति नहीं बची जहाँ यह आत्मा जाकर नहीं आई हो। परन्तु मूल आत्मपर्याय ज्यों की त्यों रही। एक ही वस्तु के पर्याय प्रतिक्षण बदलते रहते हैं, किन्तु वस्तु का वस्तुत्वभाव कभी नहीं बदलता। द्रव्यत्वभाव भी नहीं बदलने वाला है।

**द्रव्यों का वर्गीकरण**—मूलरूप में द्रव्यों के दो भेद हैं—जीव और अजीव। जीवो उवओग लक्खणो—उत० २८।१०। जीव द्रव्य चेतना एवं उपयोग व्यापारमय है। अजीव द्रव्य के पाँच भेद हैं—पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। ये पाँच द्रव्य अचेतन होते हुए भी परस्पर में बहुत-सी विलक्षण विसदृश और असमान जातीय है। जीवद्रव्य भी यद्यपि अनन्त है पर वे समान जातीय और सदृश है। उनमें विशेष मौलिक भेद नहीं है, किन्तु इन पाँचों अजीव द्रव्यों में मौलिक भेद नहीं है। इसी पाँचों द्रव्यों को अलग-अलग और जीव द्रव्य को एकरूप में परिगणित करके द्रव्यों के दो भेद भी कहे हैं। यही षड्द्रव्य हैं। बन षड्द्रव्यों में पुद्गल मूर्त है और शेष जीव अधर्म, धर्म, आकाश और काल अमूर्त है। जिसमें वर्ण, रस, गन्ध और स्पर्श हो, वह मूर्त अन्यथा अमूर्त। वैशेषिकदर्शन में शब्द को आकाश का गुण कहा गया है। शब्दाकाशगुणम् तर्कसंग्रह। परन्तु शब्द वस्तुतः गुण है ही नहीं पुद्गल की एक पर्याय विशेष ही है। गुण की परिभाषा है जिसकी सत्ता द्रव्य में सदा उपलब्ध होती हो। जब दो पुद्गल स्कन्ध परस्पर टकराते हैं तभी उसमें से शब्द प्रस्फुटित होते हैं। अतः शब्द पुद्गल का ही पर्याय है। आकाश रूप द्रव्य का गुण शब्द नहीं है। अवगाहन है। अवगाहन की परिभाषा है अन्य सर्व द्रव्यों को अवकाश देना। धर्म द्रव्य का गुण गति हेतुत्व गति में सहायक होना है।

**"चलण सहाओ धम्मो"**—गतिशील द्रव्यों की गति में निमित्त होना। अधर्म द्रव्य स्थिति हेतुत्व है। स्थितिशील द्रव्यों की स्थिति में सहायक होना। कहा है—

**गतिस्थित्युपग्रहो धर्माधर्मयो उपकारः।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालरूप द्रव्य का गुण वर्तना है, नवीन का पुराना होना व पुराने का नवीन रूप होना है। जीव द्रव्य का गुण उपयोग है—बोधरूप व्यापार और चेतना।

**वर्तना परिणामः क्रिया परत्वापरत्वे च कालस्य**

आकाश लोक-अलोक सर्वत्र व्याप्त है। धर्म और अधर्म केवल लोकाकाश तक ही रहते हैं तो जीव और पुद्गल भी लोकाकाश में ही रहते हैं। काल भी जीव और पुद्गल के आधार से केवल लोकाकाश तक ही रहता है। काल द्रव्य को छोड़कर शेष सभी द्रव्य अस्तिकाय रूप हैं। इसीलिए इन्हें पञ्चास्तिकाय कहते हैं। अस्ति का अर्थ है प्रदेश और काय का अर्थ है समूह। पांच द्रव्य प्रदेश समूह रूप होने से अस्तिकाय हैं। काल के प्रदेश नहीं होते अतः वह अस्तिकाय नहीं है। जीव और पुद्गल द्रव्य सक्रिय हैं, शेष निष्क्रिय हैं।

**सप्त तत्त्व**—तत्त्व सात है। आत्मा के लिए उपयोगी होने वाले द्रव्यों में से जीव तथा पुद्गल ये दो मुख्य ही द्रव्य हैं। इनके संयोग और वियोग से होने वाली अगणित अवस्थाओं को निम्न भागों में बांट सकते हैं। १ आस्रव २ बन्ध ३ संवर ४ निर्जरा और ५ मोक्ष। इनमें आस्रव और बन्ध, जीव और पुद्गल की संयोगी अवस्थाएँ हैं। संवर एवं निर्जरा उन दोनों की वियोगजन्य अवस्थाएँ हैं। इनमें जीव और पुद्गल को और मिला देने पर सात की संख्या हो जाती है। इन्हीं को जैनदर्शन में सात तत्त्व अथवा सप्त तत्त्व कहा जाता है। प्रत्येक आत्महितेच्छुक व्यक्ति को इन सातों का ज्ञान करना अनिवार्य है। बौद्धदर्शन में चार आर्य सत्य हैं—१ दुःखी २ समुदय ३ निरोध ४ मार्ग का विवेचन। वह जैनदर्शन के इन सात तत्वों के समान है। बौद्धदर्शन का जो आर्य सत्य दुःख है वह जैनदर्शन का बन्ध है। बौद्धदर्शन का "समुदय" आर्य सत्य है वह जैनदर्शन का आस्रव है। निरोध आर्य सत्य मोक्ष तत्व है; मार्ग आर्य सत्य संवर तथा निर्जरा के समान है। देही को देह के ममत्वभाव से पृथक् करने के लिए सात तत्वों का सम्यक् परिशीलन आवश्यक है।

**प्रमाण और नय**—इन तात्त्विक और व्यावहारिक सभी पदार्थों का यथार्थ ज्ञान करने के लिए जैन विचारकों ने उपादेय तत्त्व एवं ज्ञायक तत्व के रूप में प्रमाण, नय, सप्तभंगी एवं स्याद्वाद आदि का भी बहुत सुन्दर विवेचन किया है जो जैनदर्शन की भारतीय दर्शन को एक अनूठी देन है। नय सप्तभंगी स्याद्वाद इन अधिगम प्रकारों का जैनदर्शन में ही वर्णन उपलब्ध हैं। वस्तु के पूर्ण अंश का ज्ञान जहाँ हम प्रमाण से करते हैं वहाँ नय से हमें उसके सापेक्ष अंशों का बोध होता है। इस प्रकार स्याद्वाद पद्धति से हम जैनदर्शन के हार्द का ज्ञान कर सकते हैं। यही जैनदर्शन का आचार और विचार पक्ष है।

**'जैनं जयति शासनम्'**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org